शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-3 Issue-1
15 Jan-2012

बौद्ध साहित्य में विपश्यना

डॉ0 बलवान सिंह

रीडर, रक्षा अध्ययन विभाग, महाविद्यालय भटवली बाजार (उनवल) गोरखपुर

www.shodh.net

बौद्ध साहित्य में विपश्यना

विषय संकेतः *- दुख का दर्शन, बौद्ध साहित्य, विपश्यना*

विश्व के इतिहास में भगवान बुद्ध केवल इसलिए प्रासंगिक नहीं है कि उन्होंने ऐश्वर्यशाली जीवन का त्याग कर 'बोधि' तत्व को प्राप्त किया और एक महान विश्वधर्म का प्रवर्तन किया, बल्कि आधुनिकता की दौड़ में शामिल सम्पूर्ण मानव जाति के मानवीय विवेक को जाग्रत करने के लिए एक आध्यात्मिक और बौद्धिक परिवेश सृजित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। प्रस्तुत शोध पत्र उनकी विशिष्ट ध्यान पद्धति विपश्यना को केन्द्र में रखते हुए उनके सिद्धांतों को विश्लेषित करने का प्रयास है।

बौद्ध दर्शन के संस्थापक सिद्धार्थ गौतम की माता का नाम माया तथा पिता का नाम शुद्धोधन था। सिद्धार्थ के जन्म के एक सप्ताह बाद ही उनकी माँ के देहान्त के उपरान्त, उनके पालन-पोषण का भार उनकी मौसी तथा सौतेली माँ प्रजापति गौतमी के ऊपर पड़ा। सिद्धार्थ को संसार से विरक्त तथा अधिक विचार मग्न देख शुद्धोधन ने उनका विवाह पड़ोसी कोलिय गणराज्य की कन्या यशोधरा से कर दिया।

वृद्ध, रोगी, मृत और संन्यासी के चार दृश्यों को देख उनको संसार से विरक्ति हो गई और एक रात चुपके से वह घर से निकल गए। सर्वप्रथम वे उस समय के विख्यात गुरू आलार कालाम तत्पश्चात् उद्दक रामपुत्र के पास गए तथा वहाँ कुछ योग की विधियाँ सीख, उन्हें कोई सन्तोष नहीं हुआ। इसके पश्चात् उन्होंने बोधगया के पास प्रायः छः वर्षों तक योग और कायाकष्ट की भीषण तपस्या की। इस तपस्या के बारे में वह स्वयं कहते हैं[2] - ''मेरा शरीर दुर्बलता की चरम सीमा तक पहुँच गया था। जैसे आसीतिक (अस्सी साल वाले) की गाँठें, वैसे ही मेरे अंग प्रत्यंग हो गए थे। जैसे शाल वृक्ष की पुरानी कड़ियाँ टेढ़ी-मेढ़ी होती हैं, वैसे ही मेरी पँसुलियाँ हो गईं थीं। जैसे कच्ची तोड़ी कड़वी लौकी हवा-धूप से चुचक जाती है, मुर्झा जाती है, वैसे ही मेरे सिर की खाल चुचक मुर्झा गई थी। यदि मैं पाखाना या पेशाब करने के लिए उठता तो वहीं भहराकर गिर पड़ता। लेकिन मैंने इस तपस्या से उस चरम दर्शन को न पाया। तब विचार हुआ कि बोधि (ज्ञान) के लिए क्या कोई दूसरा मार्ग है, तब मुझे हुआ कि मैंने अपने पिता शुद्धोधन के खेत पर जामुन की ठण्डी छाया के नीचे बैठ प्रथम ध्यान को प्राप्त होकर विहार किया था, शायद वह मार्ग बोधि का हो। किन्तु इस प्रकार की अत्यन्त कृश पतली काया से अब वह प्रथम ध्यान का सुख मिलना भी सम्भव नहीं है। अतः कृशता (कमजोरी) को दूर करने के लिए मैं स्थूल आहार-दाल भात-ग्रहण करने लगा। इस समय मेरे पास पाँच भिक्षु रहा करते थे। जब मैं स्थूल आहार ग्रहण करने लगा तो वह पाँचों भिक्षु उदासीन हो चले गये।''

आगे की जीवन यात्रा के बारे में बुद्ध अन्यत्र कहते हैं[3] -''मैंने एक रमणीय भू-भाग में, वनखण्ड में एक नदी निरंजना को बहते देखा। उसका घाट रमणीय और श्वेत था। यही ध्यान-योग्य स्थान है, ऐसा सोच, वहाँ बैठ गया और जन्मने के दुष्परिणाम को जान, अनुपम निर्वाण को पा लिया। मेरा, ज्ञान दर्शन (साक्षात्कार) बन गया, मेरे चित्त की मुक्ति अचल हो गई, यह अन्तिम जन्म है, फिर अब दूसरा जन्म नहीं होगा।''

सिद्धार्थ का यह ज्ञान दर्शन था-दुःख है, दुःख का कारण है, दुःख का निरोध है और दुःख के निरोध का मार्ग (उपाय) है।

सिद्धार्थ नें उन्तीस वर्ष की आयु (534 ई0पू0) में घर छोड़ा। छः वर्ष तक योग-तपस्या करने के बाद ध्यान और चिन्तन द्वारा 36 वर्ष की आयु (528 ई0पू0) में बोधि (ज्ञान) प्राप्त कर वह बुद्ध हुए। फिर 45 वर्ष तक उन्होंने अपने धर्म (दर्शन) का उपदेश कर 80 वर्ष की आयु (483 ई0पू0) में कुशीनगर (कसया) में निर्वाण प्राप्त किया।

बुद्ध होने के बाद उन्होंने सबसे पहले अपने ज्ञान का अधिकारी उन्हीं पाँचों भिक्षुओं को समझा, जोकि कायाकष्ट की साधना त्यागने के कारण पतित समझ उन्हें छोड़ गये थे। पता लगाकर वह उनके आश्रम ऋषि-पत्तन मृगदाव (सारनाथ, बनारस) पहुँचे। बुद्ध का प्रथम उपदेश उसी शंका के समाधान के लिए था, जिसके कारण कायाकष्ट की साधना छोड़ आहार आरम्भ करने वाले गौतम को वह छोड़ आये थे। बुद्ध ने कहा[4] ''भिक्षुओं! इन दो अतियों (चरमपंथों) का सेवन नहीं करना

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-3 Issue-1
15 Jan-2012

बौद्ध साहित्य में विपश्यना

डॉ0 बलवान सिंह

रीडर, रक्षा अध्ययन विभाग, महाविद्यालय भटवली बाजार (उनवल) गोरखपुर

www.shodh.net

चाहिये-(1) काम-सुख में लिप्त होना, (2) शरीर पीड़ा में लगना। इन दोनों अतियों को छोड़ मैनें मध्यम-मार्ग खोज निकाला है, जोकि आँख देने वाला, ज्ञान कराने वाला तथा शान्ति देने वाला है। वह मध्यम मार्ग यही आर्य (श्रेष्ठ) अष्टांगिक (आठ अंगोवाला) मार्ग है, जैसे कि सम्यक् दृष्टि (सम-दर्शन) सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्म, सम्यक् जीविका, सम्यक् प्रयत्न, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि।

बुद्ध की मूलभूत समस्या दु:ख थी। बुद्ध की समस्या आत्म साक्षात्कार अथवा ईश्वर का दर्शन प्राप्त करना नहीं, बल्कि उनकी मूल समस्या जीवन में दु:ख क्यों है, यह जानना तथा दु:ख से मुक्ति का उपाय खोजना था। राजा के पुत्र होते हुए जीवन में समस्त सुख-सुविधाओं की उपलब्ध ता के बावजूद वह अनुभव करते थे कि मैं अन्दर से दु:खी क्यों हूँ ? दु:ख सत्य की व्याख्या करते हुए बुद्ध ने कहा है-''जन्म भी दु:ख है, बुढ़ापा भी दु:ख है, मरण, शोक-रूदन, मन की खिन्नता, हैरानगी दु:ख है। अप्रिय से संयोग, प्रिय से वियोग भी दु:ख है, इच्छा करके जिसे नहीं पाता वह भी दु:ख है। संक्षेप में पाँचों उपादान स्कन्ध (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) दु:ख है।''

कुछ लोग बुद्ध के इस विचार के विरुद्ध कि संसार में दु:ख ही दु:ख है यह कह सकते हैं कि संसार की कुछ अनुभूतियाँ सुखात्मक होती हैं, इसलिए समस्त संसार को दु:खात्मक कहना भूल है। इस आपत्ति के विरुद्ध बुद्ध का कहना है कि विश्व की जिन अनुभूतियों को हम सुखप्रद समझते हैं, वे भी दु:खात्मक हैं। सुखात्मक अनुभूति को प्राप्त करने के लिए कष्ट होता है। यदि किसी प्रकार वह वस्तु जो सुख का प्रतिनिधित्व करती हुई प्रतीत होती है, मिल भी जाय तो उस वस्तु के खो जाने का भय और चिंता बनी रहती है। इसीलिए कहा गया है ''काम से शोक उत्पन्न होता है, काम से भय उत्पन्न होता है।''[5] इन्द्रिय सुख के विषयों के खो जाने से भी विषाद उत्पन्न होता है। इस प्रकार जिसे साधारणतया सुख समझा जाता है, वह भी दु:ख ही है। सुख और दु:ख में वस्तुत: अन्तर कोई नहीं है। बुद्ध ने सांसारिक सुख को दु:ख इसलिए भी कहा है कि वे क्षणिक एवं नाशवान हैं। जो वस्तु क्षणिक होती है, इसके नष्ट होने पर उसका अभाव खटकता है, जिसके ग्लस्वरूप दु:ख का प्रादुर्भाव होता है अत: क्षणिक सुख को सुख कहना महान मूर्खता प्रतीत होती है।

यदि किसी प्रकार थोड़े समय के लिए विश्व के क्षणिक सुख को प्रामाणिकता दी जाय, तो भी विश्व की अनुभूतियाँ जैसे रोग, मृत्यु हमें चिन्तित एवं दु:खी बना देती हैं । प्रत्येक व्यक्ति मृत्यु के विचार से यह सोचकर कि हमें एक दिन मरना है - भयभीत एवं चिन्तित हो जाता है। धम्मपद में बुद्ध ने कहा है कि ''मानव पृथ्वी पर कोई भी ऐसा स्थान नहीं पा सकता जहाँ कि मृत्यु से बचा जा सके।'' मानव को सिर्फ मृत्यु के विचार से ही कष्ट नहीं होता है बल्कि उसे अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए अनेक प्रकार के संघर्षों का सामना करना होता है, जिससे जीवन के हर पहलू में दु:ख की व्यापकता प्रतिबिम्बित होती है। बुद्ध ने संयुत्त निकाय में कहा है-''दुनिया में दुखियों ने जितने आँसू बहाये हैं, उनका पानी महासागर में जितना जल है उससे भी अधिक है।''[6] इस प्रकार बुद्ध ने अनुभव से घोषणा की कि दु:ख जीवन का प्रथम आर्य सत्य अर्थात ध्रुव सत्य है। जिस व्यक्ति ने जीवन में दु:ख स्वरूप का अनुभव नहीं किया। वह ज्ञान (बोधि) को उपलब्धि नहीं कर सकता और न ही वह दु:ख मुक्ति के मार्ग (उपाय) की खोज में संलग्न हो सकता है।

बुद्ध का ज्ञान (दु:ख मुक्ति का उपाय-विपश्यना):- निरंजना नदी के किनारे बोधि वृक्ष के नीचे सिद्धार्थ गौतम ने कायाकष्ट एवं अनेक ध्यानों की विधियों को छोड़कर सीधे एक वैज्ञानिक की भाँति अपने अन्दर देखना प्रारम्भ किया कि दु:ख कैसे और क्यों उत्पन्न होता है तथा इसका कैसे समाध ान किया जा सकता है ? उन्होंने अपने अन्दर घटने वाली प्रत्येक घटना को पूरी सजगता से देखना प्रारम्भ किया और पाया कि जो भी अन्दर चित्त में संस्कारों के रूप में अच्छा या बुरा संग्रहीत है, वह विचारों के रूप में लगातार उठता रहता है। उठने वाला प्रत्येक विचार मन एवं शरीर पर अपनी प्रकृति के अनुसार अच्छा या बुरा प्रभाव छोड़ता है अर्थात यदि सुखद विचार है तो वह सुखकारी संवेदना छोड़ता है और यदि दु:खद विचार है तो वह मन एवं शरीर पर दु:खकारी संवेदना छोड़ता है।

उन्होंने विचारों का और गम्भीरता से निरीक्षण किया तो पाया कि सभी विचार मुख्यत: दो भागों में बँटे होते हैं-(1) प्रेम पूर्ण रागात्मक विचार अथवा (2) ईर्ष्यापूर्ण (शत्रुतापूर्ण) द्वेषात्मक विचार। संसार की जिन चीजों को हम पसन्द करते हैं, उनके प्रति आसक्तिपूर्ण होकर रागात्मक हो जाते हैं और इच्छा करते हैं कि ऐसी चीजें हमारे पास सदैव सुरक्षित रहें। दूसरी ओर संसार की जिन चीजों को नहीं पसन्द करते हैं, उनके प्रति स्वभावत: हम ईर्ष्यापूर्ण, द्वेषात्मक हो जाते हैं और इच्छा करते हैं कि ऐसी चीजें हमसे दूर रहें तथा नष्ट हो जायें और इनसे सम्बन्धित जो भी विचार उठता है वह हमें दु:ख की अनुभूति दे जाता है। इस प्रकार संसार का प्रत्येक प्राणी कभी सुख कभी दु:ख की अनुभूति करता है। आगे चलकर उन्होंने अनुभव किया कि जिन चीजों को हम प्रेम (राग) करते हैं अथवा जिनसे द्वेष करते हैं, वह भी स्थायी नहीं है। कोई व्यक्ति आज अच्छा लग रहा है, वह कल बुरा लगने लगता है। जो फूल आज सुन्दर है, सुगन्ध बिखेर रहा है, प्रेमपूर्ण रागात्मक लग रहा है,

शोध सचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-3 Issue-1
15 Jan-2012

बौद्ध साहित्य में विपश्यना

डॉ0 बलवान सिंह

रीडर, रक्षा अध्ययन विभाग, महाविद्यालय भटवली बाजार (उनवल) गोरखपुर

www.shodh.net

कल वही मुरझाकर सड़ जाता है तथा दुर्गन्धपूर्ण, और बुरा लगने लगता है। चूँकि संसार की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है अत: कोई भी वस्तु स्थायी रूप से न तो प्रेमपूर्ण, रागात्मक लग सकती है और न ही स्थायी रूप से द्वेषपूर्ण (शत्रुतापूर्ण) प्रतीत हो सकती है। अत: राग और द्वेष, प्रेम और शत्रुता, अच्छा या बुरा लगना या होना स्थायी नहीं है अर्थात् अनित्य है। राग अथवा द्वेषपूर्ण जो भी विचार उठता है, उससे मानव मन का तादात्म्य हो जाता है और वह उसकी प्रकृति के अनुसार सुख एवं दु:ख को भोगता है।

सिद्धार्थ गौतम को इस समस्या का समाधान यह सूझा कि यदि मैं इन विचारों के रूप में उठने वाली इच्छाओं (तृष्णा) के प्रति तटस्थ होकर बिना प्रतिक्रिया किए सिर्फ देखूँ और समता में स्थित रहूँ तो इन विचारों का सुखद अथवा दु:खद प्रभाव मेरे मन एवं शरीर पर नहीं पड़ेगा है और मैं दु:ख से बच सकता हूँ। यही समझ (ज्ञान) बुद्ध की खोज थी, जिसे उन्होंने विपश्यना विधि नाम दिया।

'विपश्यना' पालि भाषा के 'विपस्सना' शब्द से बना है, जिसका अर्थ है ''तथ्य रूप में अर्थात् शुद्ध रूप में जो जैसा है, उसे वैसा देखना।'' 'विपश्यना' का अर्थ है ''यथाभूत ज्ञान दर्शनम्'' अर्थात जो जैसा है उसे वैसे ही उसी रूप में देखना। राग-द्वेष और पुरानी मान्यताओं तथा धारणाओं के बगैर शुद्ध रूप में देखना अथवा बिना किसी प्रतिक्रिया व्यक्त किये हर क्षण की सच्चाई को सिर्फ देखना, विपश्यना है।[7] साक्षी अथवा द्रष्टाभाव की साधना, सजगता, सचेतता अथवा होशपूर्ण रहने की साधना, वर्तमान अथवा क्षण-क्षण में जीने की साधना, ये सभी 'विपश्यना' साधना के ही नाम है।

वास्तव में मानव भविष्य में जीता है अथवा भूतकाल की घटनाओं का विचार करता है। वह वर्तमान क्षण में नहीं होता। वर्तमान क्षण में जीने की विधि विपश्यना है।'' इस विधि के अनुसार वर्तमान क्षण में स्थित रहे और इस बात के लिए सचेत रहें कि हम इस समय यहाँ हैं और जीवंत रहने का कोई क्षण है तो बस 'यही इक पल' है। यही एक मात्र क्षण है जो वास्तविक है। इस क्षण में यहाँ होना और इस क्षण का आनन्द उठाना हमारा सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य है। यही बुद्ध की विपश्यना विधि का सार तत्व है।''[8] विपश्यना के सम्बन्ध में ओशों ने अपने प्रवचन में कहा है कि 'विपश्यना वह ध्यान विधि है जिसने संसार में किसी भी अन्य ध्यान की अपेक्षा सबसे अधिक लोगों को सम्बुद्ध किया है, क्यों कि यह सार मात्र ही है।[9] ''भगवान बुद्ध का यह प्रयोग अति निर्मल, सार्वजनिक, सार्वभौमिक, सार्वकालिक, सनातन, वैज्ञानिक तथा आशुफलदायी था और आज भी है।[10]

विपश्यना विधि के अभ्यास से सिद्धार्थ गौतम को ज्ञान (बोधि) की उपलब्धि के पश्चात ऐसी अनुभूति हुई जैसे हजारों योनियों से मुक्ति मिल गई हो। इस कारागार का द्वारपाल था अज्ञान। एक बार कारागार का द्वारपाल चला जाए तो वह कारागार ही ध्वस्त हो जाता है और फिर वह कभी बन नहीं सकता। सिद्धार्थ गौतम मुस्कराकर आत्मालाप करने लगे-''ओ कारागार के प्रहरी। मैंने तुमको देख लिया है। कितनी योनियों से तुमने मुझे जन्म-मरण के कारागार में बन्द रखा है। किन्तु अब मैंने तुम्हारा वास्तविक स्वरूप भली-भाँति पहचान लिया है। अब इसके बाद तुम मेरे लिए और कारागारों का निर्माण नहीं कर सकोगे''[11]

वह कारागार का प्रहरी कौन है, इसे पुन: समझने की आवश्यकता है। व्यक्ति के अन्दर संस्कारों के रूप में संग्रहीत अच्छे-बुरे विचारों का उदगम होता रहता है। अच्छे-बुरे विचारों के अनुसार मन तत्काल प्रतिक्रिया करता है कि ''अच्छा है'' या ''बुरा है''। इस प्रतिक्रिया के अनुसार शरीर अच्छी या बुरी संवेदनाएँ छोड़ता है। अच्छी संवेदना की उत्पत्ति में हम सुख अनुभव करते हैं और बुरी संवेदना की उत्पत्ति में हम दु:ख अनुभव करते हैं। इस प्रकार सुख-दु:ख का कारागार निर्मित होता चला जाता है और हम भव-बन्धन में बंधते चले जाते है। यदि हम सुखद एवं दु:खद विचारों के उठने पर कोई प्रतिक्रिया न करें उनसे कोई तादात्म्य न करें तथा तटस्थ होकर सिर्फ देखें अर्थात् साक्षी हो जाएँ तो सुख-दुख के भोग से बच सकते हैं। भव-बन्धन से मुक्त हो सकते है। इसी कारागार के प्रहरी की पहचान सिद्धार्थ गौतम ने की थी और सम्यक् संबुद्ध हुए थे। इसी को उन्होंने मध्यम मार्ग कहा अर्थात् न तो हमें राग में जाना है और न द्वेष में जाना है बल्कि मध्य में स्थित होकर दोनों के द्रष्टा अर्थात् साक्षी हो जाना है। बुद्ध ने कहा है कि प्रत्येक संस्कार अनित्य है (सब्बे संखारा अनिच्चाति), वह उत्पन्न होता है और यदि हम द्रष्टा (पश्य) रहें, तो बिना प्रभाव छोड़े निर्झर हो जाता है, चला जाता है। अर्थात् ''उपज्जित्वा निरुझन्ति'' उत्पन्न होता है, और झर जाता, नष्ट हो जाता है। एक संस्कार उत्पन्न होता है और निर्झर हो जाता है, दूसरा संस्कार उत्पन्न होता है और वह भी निर्झर हो जाता है तथा इन्द्रियों के बाह्य जगत के सम्पर्क से पुन: नए संस्कारों का जन्म होता है और यह क्रिया अबाध गति से चलती रहती है। इसी को बुद्ध ने प्रतीत्य-समुत्पाद कहा।

प्रतीत्य समुत्पाद का अर्थ है ''प्रत्यय से उत्पाद'' जिसका अर्थ है, 'बीतने से उत्पाद'-अर्थात् एक के बीत जाने, नष्ट हो जाने पर दूसरे की उत्पत्ति होती है। बुद्ध मानते हैं कि ''इसके होने पर यह होता है।''(अस्मिन सति इदं भवति।) इसी से बुद्ध के अनित्यवाद की भी पुष्टि होती है। बुद्ध का

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-3 Issue-1
15 Jan-2012

बौद्ध साहित्य में विपश्यना

डॉ0 बलवान सिंह

रीडर, रक्षा अध्ययन विभाग, महाविद्यालय भटवली बाजार (उनवल) गोरखपुर

www.shodh.net

अनित्यवाद भी ''दूसरा ही उत्पन्न होता है, दूसरा ही नष्ट होता है।'' के अनुसार किसी एक मौलिक तत्व का बाहरी अपरिवर्तन मात्र नहीं, बल्कि एक का बिल्कुल नाश और दूसरे का बिल्कुल नया उत्पाद होता है।''[12] एक क्षण के अपने गुण-धर्म के अनुसार दूसरे क्षण की उत्पत्ति होती है किन्तु दूसरा क्षण पूर्णत: प्रथम क्षण से भिन्न होता है। यही बुद्ध का क्षणिकवाद है। ''क्षणिकवाद के सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक वस्तु अपने उत्पन्न होने के दूसरे क्षण में नष्ट हो जाती है। जैसे दीपक की ज्योति प्रतिक्षण बदलते रहने पर भी, समान आकार की ज्ञान-परम्परा से 'यह वही दीपक है' यही प्रतीति होती है, उसी प्रकार प्रत्येक वस्तु के क्षण-क्षण में नष्ट होने पर भी पूर्व और उत्तर क्षणों में सादृश्य होने के कारण वस्तु का प्रत्याभिज्ञान होता है।''[13] इसीलिए बुद्ध कहा करते थे कि वर्तमान क्षण ही आपके अधिकार में है, उसी में जिओ । भूतकाल व्यतीत हो चुका है, उसके लिए दु:ख करना या उसका पश्चाताप करना दु:ख संवर्धन है तथा भविष्य अभी आया नहीं उसके लिए भयभीत होना या चिन्ता करना भी दु:खकारक है। वर्तमान क्षण में जीना ही धर्म है। वर्तमान क्षण में स्थित रहें तथा स्वीकार करें कि इस क्षण की सच्चाई यह है।

प्रतीत्य-समुत्पाद सिद्धान्त को 'द्वादश-निदान' (The Twelve Source) कहा जाता है। यह सिद्धान्त दु:ख के कारण का पता लगाने के लिए बारह कड़ियों की विवेचना करता है।'' इस सिद्धान्त के अनुसार दु:ख का कारण 'जाति' (Rebirth) है । 'जाति' का कारण 'भव' (The will to be born) है। 'भव' का कारण 'उपादान' (Mental Clinging) है। उपादान का कारण तृष्णा (Craving) है। तृष्णा का कारण 'वेदना' (Sense-experience) है। वेदना का कारण स्पर्श (Sense Contact) है। स्पर्श का कारण 'षडायतन' (Six Sense Organs) है। षडायतन का कारण 'नाम-रूप' (Mind Body Organism) है। नाम-रूप का कारण 'विज्ञान' (Consciousness) है। विज्ञान का कारण 'संस्कार' (Impression) है। संस्कार का कारण 'अविद्या' (Ignorance) है।[14]

प्रतीत्य-समुत्पाद सिद्धान्त को जन्म-मरण की व्याख्या करने के कारण, संसार चक्र (The Wheel of the World) भव चक्र (The Wheel of Existence) एवं जन्म-मरण चक्र (The Cycle of Birth and death) आदि के नामों से भी जाना जाता है। इसे 'धर्मचक्र' भी कहा जाता है, क्योंकि यह धर्म का स्थान ग्रहण करता है। मज्झिम निकाय में बुद्ध ने स्वयं कहा है, ''जो प्रतीत्य-समुत्पाद का ज्ञाता है वह धर्म का ज्ञाता है, जो धर्म का ज्ञाता है, वह प्रतीत्य समुत्पाद का ज्ञाता हैं।''

बुद्ध 'आत्मा' के अस्तित्व को नहीं मानते थे, अत: प्रश्न उपस्थित हुआ कि जब आत्मा ही नहीं है तो निर्वाण किसका ? बुद्ध ने इस शंका का अनेक प्रकार से समाधान करने की चेष्टा की और अनेक दृष्टान्तों द्वारा इस विषय का प्रतिपादन किया। आग की उपमा देते हुए उन्होंने कहा कि जैसे जलती हुई आग बुझ जाय तो यह कहना कठिन है कि वह आग पूर्व-पश्चिम, उत्तर या दक्षिण कौन सी दिशा को गयी। आग के विषय में केवल यही कहा जा सकता है कि वह तृण-काष्ठ के उपादान के कारण जल रही थी, वह उपादान अब समाप्त हो गया और नूतन उपादान उसे मिल नहीं सका, इसलिए वह बुझ गयी। इसी प्रकार रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान के क्षीण हो जाने पर 'निर्वाण' हो जाता है। बौद्ध सूत्रों में जगह-जगह कहा गया है कि ''जैसे दीपक में तेल और बत्ती डालते रहने से दीपक जलता रहता है, उसी प्रकार सांसारिक वस्तुओं में सुख का अनुभव करने से संसार बढ़ता जाता है, इसलिए दु:ख का निरोध करने के लिए तृष्णा-क्षय परम आवश्यक है। इस प्रकार पूर्ण रूपेण तृष्णा का क्षय हो जाना 'निर्वाण' है।''[15] डॉ0 राधाकृष्णन का कहना है कि ''निर्वाण वह अवस्था है जो नैतिक आचरणों की पूर्णता से प्राप्त होती है, जो पवित्र धार्मिक जीवन की साधना का परिणाम है। निर्वाण वासनाओं से छुटकारे का नाम है। निर्वाण वह उज्ज्वल शान्ति है जो कभी भंग नहीं होती।''[16] भगवान बुद्ध प्राय: कहा करते थे-भिक्षुओं ! मैं दो बातों का ही उपदेश देता हूँ-दु:ख और दु:ख निरोध। दु:ख संसार है और दु:ख निरोध निर्वाण है। मज्झिम निकाय में इसे 'अनुतर योगक्खेम' बतलाया गया है और अंगुत्तर निकाय में 'एहिपस्सको' (आओ और देखो) अर्थात् प्रत्यात्मवेदनीय कहा गया है। बुद्ध के अन्तिम वचन थे-भिक्षुओं! सब संस्कृति, धर्म विनाशशील हैं, अप्रमाद के साथ ''निर्वाण'' प्राप्त करो।

धम्मपद में निर्वाण को ''निब्बानं परमं सुखम्''[17] अर्थात आनन्द, परम सुख, पूर्ण-शांति तथा लोभ, घृणा और भ्रम से रहित अवस्था कहा गया है। निर्वाण का मुख्य स्वरूप यह है कि वह अनिर्वचनीय है। तर्क और विचार के माध्यम से इस अवस्था का वर्णन करना असम्भव है। डॉ0 दास गुप्ता ने कहा है कि-''लौकिक अनुभव के रूप में निर्वाण का निर्वचन मुझे एक असाध्य कार्य प्रतीत होता है-यह एक ऐसी स्थिति है जहाँ सभी लौकिक अनुभव निषिद्ध हो जाते हैं, इसका विवेचन भ. ावात्मक प्रणाली से शायद ही सम्भव है।''[18] डॉ0 कीथ ने भी इस तथ्य की और ध्यान आकर्षित करते हुए कहा है-''सभी व्यावहारिक शब्द अवर्णनीय का वर्णन करने में असमर्थ हैं।''[19]

बौद्ध धर्म के प्रमुख धर्मोपदेशक नागसेन ने यूनान के राजा मिलिन्द के सम्मुख निर्वाण की

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-3 Issue-1
15 Jan-2012

बौद्ध साहित्य में विपश्यना

डॉ0 बलवान सिंह

रीडर, रक्षा अध्ययन विभाग, महाविद्यालय भटवली बाजार (उनवल) गोरखपुर

www.shodh.net

व्याख्या उपमाओं की सहायता से की है। निर्वाण को उन्होंने सागर की तरह गहरा, पर्वत की तरह ऊँचा और मधु की तरह मधुर कहा है। इसके साथ ही साथ उन्होंने यह भी कहा है कि निर्वाण के स्वरूप का ज्ञान उसे ही हो सकता है जिसे इसकी अनुभूति प्राप्त है। जिस प्रकार अन्धे को रंग का ज्ञान कराना सम्भव नहीं है, उसी प्रकार जिसे निर्वाण की अनुभूति अप्राप्य है, उसे निर्वाण का ज्ञान कराना सम्भव नहीं है। अत: निर्वाण की जितनी परिभाषाएँ दी गयी हैं वे निर्वाण के यथार्थ स्वरूप बतलाने में असफल हैं।

विश्व इतिहास में भगवान बुद्ध सिर्फ इसलिए प्रासंगिक नहीं हैं कि वे बुद्ध हैं, भगवत्ता से युक्त हैं और उन्होंने एक महान विश्व-धर्म का प्रवर्तन किया है, बल्कि आधुनिक देश और काल में अवस्थित व्यक्ति के लिए उनकी महत्ता और प्रासंगिकता इस कारण बढ़ जाती है कि उन्होंने मानवीय विवेक को स्वत: पल्लवित और पुष्पित होने का एक आध्यात्मिक और बौद्धिक परिवेश प्रदान किया। बौद्ध धर्म एक ऐसा धर्म है जिसमें मानवीय विवेक और प्रज्ञा के प्रति विश्वास व्यक्त किया गया है। निश्चित रूप से महात्मा बुद्ध ऐसे महापुरुष हैं, जिन्होंने अन्ध-आस्था के स्थान पर मानवीय विवेक की प्रतिष्ठा की। बुद्ध स्पष्टत: कहा करते थे कि, ''किसी बात को सिर्फ इसलिए मत मानों कि वे बुद्ध वचन हैं, उसे अपने विवेक की कसौटी पर कसो।''[20] अपने आपमें यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है। इसमें हम मानवीय पुनर्जागरण एवं आधुनिकता के बीज खोज सकते हैं।

बुद्ध के वचन धार्मिक कट्टरपन की कैद में जकड़े मानव के लिए राजमार्ग प्रशस्त करते हैं। अपने महापरिनिर्वाण से पूर्व तथागत ने आनन्द से कहा था, ''हे आनन्द ! तुम में से किसी का यह विचार हो सकता है कि शास्ता का वचन अतीत हो गया, अब हमारा कोई शास्ता नहीं है। पर, ऐसा विचार उचित नहीं है। हे आनन्द! तुम अपने लिए स्वयं दीपक होओ।''[21] इस प्रकार 'अप्प दीपो भव' का उद्घोष हुआ। 'आत्म दीपो भव' के इस उद्घोष से विवेक की स्वतंत्र ज्ञान परम्परा की धारा को बल मिलता है और उसका परिवर्तन होता है। इससे लोकमंगल की साधना को शक्ति मिलती है। देकार्त का सन्देहवाद चिन्तन के क्षेत्र में आधुनिकता का प्रयाण-बिन्दु माना जाता है, लेकिन उससे भी पहले मानवीय परम्परा में सहज दार्शनिक जिज्ञासा-भाव के सूत्र बौद्ध-दर्शन में दिखते हैं। बौद्ध चिन्तन ने बुद्धिवाद की जड़ों को और अधिक मजबूती प्रदान की। बुद्ध के वचनों से लेकर नागार्जुन के शून्यवाद और अन्य बौद्ध दार्शनिकों के चिन्तन में इसका स्पष्ट प्रतिफलन हुआ है। शायद इसी आधार पर रामधारी सिंह दिनकर ने यह अभिमत प्रकट किया है कि ''जब से संसार में बुद्धिवाद का जोर बढ़ा है, बौद्ध धर्म भारत से बाहर और भारत में भी काफी लोकप्रिय हो उठा है।''[22] निश्चित रूप से बुद्ध के वचन ज्ञान की बौद्धिक परम्परा का उद्घोष हैं। इनमें व्यक्ति की स्वतंत्रता, चयन की स्वतंत्रता, मनुष्यता के कल्याण जैसी शुभ संकल्पनाएँ सन्निहित हैं। इसी कारण सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने स्पष्ट किया है कि ''शंका, सन्देह और नास्तिकता से भरे हुए कितने ही, साहित्य में बुद्धदेव का आदर यह समझकर करते हैं कि वे मानवतावाद के प्राचीनतम प्रवर्तकों में एक है।''

विवेक और मानव-प्रज्ञा पर विशेष जोर देने के कारण ही बौद्ध-धर्म आधुनिक साहित्य के लिए प्रमुख आधार-स्रोत बन सका। बुद्ध की जीवनवृत्त की संरचना के लिए उपलब्ध स्रोत सामग्री में अश्वघोष कृत बुद्धचरित का महत्व अत्यधिक है। यह अकारण नहीं है कि अंग्रेजी साहित्य में आधुनिकता (Modernism) के प्रणेता कवि टी0एस0 इलियट भी बौद्ध धर्म से प्रभावित थे। उनकी 'द वेस्ट लैण्ड' नामक लम्बी कविता इसका प्रमाण है। इसके अलावा हरमन हेस के उपन्यास 'सिद्धार्थ' में बौद्ध-चिन्तन देखने को मिलता है तथा एडविन आर्नड की कृति 'द लाइट ऑफ एशिया' के माध्यम से बुद्ध की जीवनी को संसार के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। इसके अलावा अज्ञेय की कविता 'असाध्य-वीणा' पर बौद्ध धर्म का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

भगवान बुद्ध भारत के इतिहास में सामाजिक न्याय के महानायक के रूप में दिखाई देते हैं। उन्होंने वर्ग और जाति का भेदभाव समाप्त कर मानवीय एकता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया था और कहा था कि मनुष्य मात्र की एक ही जाति है। उन्होंने सामाजिक असमानता और वर्णगत तथा जातिगत द्वेष भावना को मिटाकर मानव के ईश्वरत्व को प्रतिष्ठित करने तथा मानव-मानव के बीच की कृत्रिम दूरियों को मिटाने का आजीवन प्रयास किया। जन्म और जाति की वरीयता को उखाड़ फेंकने के बुद्ध के प्रयत्न ने समाज के करोड़ों वंचित लोगों को अपनी और आकृष्ट किया। उन जातियों को यह बात बहुत अच्छी लगती थी कि बौद्ध उपदेशक जातिवाद को नहीं मानते थे। बौद्ध संघों में कोई जातिभेद नहीं था। भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को उपदेश देते हुए कहा था-''हे भिक्षुओ! जिस प्रकार गंगा, यमुना, असिरावती, सरयू और माही जैसी महानदियाँ सागर में पहुँचकर अपना पूर्ण नाम खो देती हैं और सागर के नाम से प्रसिद्ध होती हैं, उसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र भी तथागत द्वारा दिए गय धर्म नियम स्वीकार करके गृहस्थ से परिव्राजक हो जाते हैं तो अपने पूर्व नाम-गोत्र खोकर वे भिक्षु कहलाते हैं।''[23]

महात्मा बुद्ध का जन्म एक गणतंत्रात्मक संघीय राज्य में हुआ था। अत: गणतन्त्रात्मक

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-3 Issue-1
15 Jan-2012

बौद्ध साहित्य में विपश्यना

डॉ0 बलवान सिंह

रीडर, रक्षा अध्ययन विभाग, महाविद्यालय भटवली बाजार (उनवल) गोरखपुर

www.shodh.net

प्रणाली की और उनका झुकाव स्वाभाविक था। बुद्ध ने उस राजनैतिक प्रणाली को धार्मिक क्षेत्र में भी कार्यान्वित किया। यही कारण है कि उन्होंने अपने भिक्षु संगठन का नाम भी 'संघ' रखा। उनका भिक्षु संघ वस्तुतः एक धार्मिक गणतन्त्र था, उसमें समस्त सदस्यों के अधिकार समान थे। बौद्ध धर्म ने अपने समय की ही नहीं, बल्कि बहुत बाद तक की राजनीति को प्रभावित किया। चन्द्रगुप्त मौर्य जोकि साम्राज्य विस्तार की नीति में विश्वास करता था, और जिसने अपने अथक प्रयासों से एक विशाल मौर्य साम्राज्य की स्थापना की थी उसी के उत्तराधिकारी अशोक ने बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर अहिंसा को अपने शासन का आधार बनाया। कलिंग विजय के बाद उसने युद्ध की राजनीति को त्याग दिया और धम्म विजय का लक्ष्य निर्धारित किया। अशोक के बाद यद्यपि उसके उत्तराधि कारी इस नीति का अच्छी तरह से पालन नहीं कर सके परन्तु कुषाण-वंश के राजा कनिष्क ने एक बार फिर बौद्ध धर्म को अपना व्यक्तिगत धर्म बनाया और उसके प्रचार के लिए प्रयास किए। इसी प्रकार सम्राट हर्षवर्धन ने बौद्ध धर्म के विकास के लिए कन्नौज महासभा आयोजित की और अनेक धार्मिक सम्मेलन बुलाये। स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म ने भारतीय राजनीति को अहिंसा की और मोड़ा। उसे विश्व कल्याण के सिद्धान्त को स्वीकार करने की प्रेरणा दी। इससे समाज में सहिष्णुता और भाईचारे की भावना विकसित हुई।

विश्व मानचित्र पर भारत को प्रतिष्ठित करने का श्रेय मुख्य रूप से बौद्ध धर्म एवं उनके आचार्यों को जाता है जिन्होंने सम्पूर्ण मानवता के कल्याण के लिए बुद्ध की शिक्षाओं को न केवल भारत अपितु अन्यान्य दूरस्थ देशों में अपने साहस एवं श्रम के द्वारा पहुँचाया। बौद्ध धर्म की शिक्षा एवं प्रसार के लिए भारत में तक्षशिला, नालन्दा, विक्रमशिला, जगदलपुर, ओदन्तपुरी, बल्लभी आदि विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। यहाँ के आचार्य, ज्ञान एवं आचरण के प्रतिमान के रूप में सम्पूर्ण विश्व के लिए अनुकरणीय थे। इसीलिए भारतीय उच्चशिक्षा के केन्द्रों में चीन, तिब्बत, कोरिया, मध्यएशिया आदि के छात्र अध्ययन हेतु सदैव आते-जाते रहते थे। बौद्ध आचार्यों के ज्ञान एवं प्रतिभा से प्रभावित होकर अनेक विदेशी राजाओं ने इन्हें अपने देश में आमंत्रित किया। इन आचार्यों ने उत्तरी कोरिया से रोम तक जाने वाले दुर्गम कौशेय पथ को पार कर, न केवल भगवान बुद्ध के धर्मिक सन्देशों का प्रचार एवं प्रसार किया वरन अनेक देशों में शिक्षण संस्थानों की स्थापना कर भारतीय ग्रन्थों का वहाँ की भाषाओं में अनुवाद किया। साथ ही साथ उन देशों के मान्य ग्रन्थों को अपनी भाषा में अनूदित कर उन्हें अपने साथ लाये। बौद्ध आचार्यों ने चिकित्सा, ज्योतिष, भौतिकी, रसायन, धर्म, दर्शन एवं व्याकरण आदि विषयों पर भी अनेक ग्रन्थों की रचना की। बौद्ध धर्म के प्रमुख आचार्यों में नागार्जुन, अश्वघोष, कुमार जीव, बुद्धघोष, बोधिधर्म, वसुबन्धु, अतिश दीपांकर श्रीज्ञान, कमलशील, पद्मसम्भव, विभूतिचन्द्र, दानशील का नाम आता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म ने भारतीय समाज, राजनीति, धर्म, साहित्य और कला के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया और मानव को एक नई दिशा प्रदान की।

अपनी महत्ता एवं योगदान के कारण बौद्धधर्म बर्मा, श्रीलंका, थाइलैण्ड, तिब्बत, चीन, जापान, वियतनाम आदि देशों में फैल गया तथा वहाँ आज भी विद्यमान है। बौद्ध धर्म की प्रासंगिकता वर्तमान युग में और भी बढ़ गई है। आधुनिक युग का अति-व्यस्त जीवन और उससे उपजा तनाव तथा तनाव की अवस्था मे लिए गए निर्णयों से उत्पन्न संघर्ष (युद्ध एवं आतंकवाद) आज मानव जीवन के अभिन्न अंग बन गए हैं। विश्व के विद्वान धीरे- धीरे इस निष्कर्ष पर पहुँच रहे हैं कि मानव-मन की जटिल समस्याओं का निदान भगवान बुद्ध की अमृत-वाणी में दिए गए उपदेशों एवं उनकी ध्यान की विधि 'विपश्यना' में विद्यमान है। इस दृष्टि से आज सम्पूर्ण विश्व भारत की और एक आशा भरी दृष्टि से देख रहा है।

सन्दर्भः-

1.डॉ0 सद्धातिस्स, अनुवाद-विट्ठलदास मोदी, बुद्ध जीवन और दर्शन, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, पृष्ठ-11
2.राहुल सांकृत्यायन, दर्शन-दिग्दर्शन, किताब महल, इलाहाबाद 1978, पृष्ठ 501-2
3.राहुल सांकृत्यायन, उपर्युक्त, पृष्ठ 503
4.'धर्मचक्रप्रवर्तन-सूत्र'-संयुत्त निकाय 55/2/1 (बुद्धचर्या, पृष्ठ-23)
5.राहुल सांकृत्यायन, धम्मपदमं-215, प्रकाशक बुद्ध विहार रिसालदार पार्क लखनऊ पृष्ठ-91
6.प्रो0 हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा मोतीलाल बनारसी दास, 41 यू0ए0 बंगला रोड, जवाहर नगर दिल्ली, पृष्ठ-109
7.सत्यनारायण गोयनकाः धर्म-जीवन जीने की कला, विपश्यना विशोधन विन्यास, धम्मगिरि, इगतपुरी, महाराष्ट्र पृष्ठ-89
8.तिक न्यात हन्ह, ''समग्र शांति'', फुल सर्कल पब्लिशिंग प्रा0लि0 दिलशाद गार्डेन, जी0टी0रोड,

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-3 Issue-1
15 Jan-2012

बौद्ध साहित्य में विपश्यना

डॉ0 बलवान सिंह

रीडर, रक्षा अध्ययन विभाग, महाविद्यालय भटवली बाजार (उनवल) गोरखपुर

www.shodh.net

दिल्ली, पृष्ठ-16
9.ओशो, ध्यान योग-प्रथम और अन्तिम मुक्ति, रेबल पब्लिशिंग हाउस प्रा0लि0 50, कोरेगाँव पार्क, पूना, पृष्ठ-73
10.सत्यनारायन गोयनका, त्रिपिटक में सम्यक सम्बुद्ध, भाग-दो, विपश्यना विशोधन विन्यास, धम्मगिरि, इगतपुरी, महाराष्ट्र पृष्ठ-1
11.तिक न्यात हन्ह, ''जहं जहं चरन परे गौतम के'' हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा0लि0 18-19 दिलशाद गार्डन, जी0टी0रोड, दिल्ली, पृष्ठ-135-136
12.राहुल सांकृत्यायन ''दर्शन-दिग्दर्शन'' किताब महल, इलाहाबाद, 1978, पृष्ठ-514
13.डॉ0 जगदीश चन्द्र जैन, ''भारतीय दर्शन एक नयी दृष्टि'' चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी, पृष्ठ-72
14.प्रो0 हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, 'भारतीय दर्शन की रूपरेखा', उपर्युक्त, पृष्ठ-112
15.डॉ0 जगदीश चन्द्र जैन, भारतीय दर्शन एक नयी दृष्टि, उपर्युक्त, पृष्ठ-86
16.रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद पृष्ठ-173
17.राहुल सांकृत्यायन, धम्मपदं-203, उपर्युक्त, पृष्ठ-92
18.डॉ0 दास गुप्ता, 'ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलॉसफी', वाल्यूम-।, पृष्ठ-109
19.डा0 कीथ, 'बुद्धिष्ट फिलॉसफी, आक्स्फोर्ड प्रकाशन, पृष्ठ-129
20.सामधेंग रिनपोछे, लेख, 'नवनीत' पत्रिका, जनवरी, 2005
21.रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ-177
22.रामधारी सिंह दिनकर, उपर्युक्त, पृष्ठ 177-78
23.डॉ0 राधाकृष्णन, गौतम बुद्ध : जीवन और दर्शन, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली 1981 पृष्ठ-15